International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 18-07-2021, Accepted: 02-08-2021, Published: 18-08-2021
Volume 7; Issue 4; 2021; Page No. 96-100

अनुभूति के विविध रुप और साहित्य

अनिल कुमार सिंह
सहायक प्रोफ़ेसर, पी. जी. डी. ए. वी. कॉलेज (सांध्य), दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, भारत

सारांश
इसमें कोई दो राय नहीं कि अनुभूति कला और साहित्य का मूल अवयव है। साहित्य में अनुभूति के विविध रूपों की पहचान और उसके स्वरुप का विवेचन बहुत पहले से किया जाता रहा है, जिसका मूल क्षेत्र सौन्दर्यानुभूति और रसानुभूति था। हम यह भी जानना चाहते हैं कि इधर हाल के दिनों में अनुभूति को जीवन के सामान्य अनुभूतियों से तुलना करते हुए जो नए अध्ययन और चिंतनों का सूत्रपात किया गया है, उसकी दिशा क्या है? इस शोध आलेख में उन्हीं को आधार बनाया गया है और यह जानने का प्रयास किया गया है कि

1. जीवन के सामान्य अनुभूति से सौन्दर्यानुभूति भिन्न कैसे है ?
2. कला और विज्ञान जगत की अनुभूति का स्वरुप क्या है ?
3. अनुभूति की व्यापक सत्ता का क्या तात्पर्य है ?
4. उत्तर आधुनिक विमर्श में अनुभूति संबंधी मान्यताएं क्या हैं?

मूल शब्द: अनुभूति, विविध रुप, साहित्य

प्रस्तावना

मनुष्य अपने रागात्मक कार्य व्यापारों में यथार्थ के प्रति जो प्रतिक्रिया व्यक्त करता है उसे सामान्यतः अनुभूति कहा जाता हैं। मनुष्य के ज्ञानेंद्रियों में गोचर-अगोचर प्रकृति के विभिन्न रूपों के साथ संबंध स्थापन की अनोखी शक्ति विद्यावान होती है। उसी क्षमता के कारण वह आंतरिक-बाह्य रूप तरंगों से अपने मनोजगत में उनसे संबद्ध कल्पना का निर्माण करता है और इसी की रूप गति से उसके भीतर विविध भाव या मनोविकारो उत्पन्न होते है। सौंदर्य, माधुर्य, विचित्रता, भीषणता, क्रूरता जैसे भाव बाहरी रूपों और व्यापारों से ही निष्पन्न होती हैं। जब हम अपनी आँखों से बाह्य वस्तुओं को देखने में प्रवृत्त होते है, तब रूप हमारे बाहर प्रतीत होते हैं और जब हम अंतर्मुखी होते है, तब वे हमारे भीतर दिखाई पड़ते हैं। इस प्रकार रुप की सत्ता बाहर भीतर दोनों स्तरों देखी जा सकती है। रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में "मानसिक रूप विधान का नाम ही संभावना या कल्पना है। मन के भीतर यह रूपविधान दो तरह का होता है। या तो यह कभी प्रत्यक्ष देखी हुई वस्तुओं का ज्यों-का-त्यों प्रतिबिंब होता है अथवा प्रत्यक्ष देखे हुए पदार्थों के रूप, रंग, गति आदि के आधार पर खड़ा किया हुआ नया वस्तु व्यापार विधान। प्रथम प्रकार की आभ्यंतर रूप-प्रतीति स्मृति कहलाती है और द्वितीय प्रकार की रूपयोजना या मूर्तिविधान को कल्पना कहते हैं।"[1] उन्होंने रूपविधान के तीन प्रकार बताए-प्रत्यक्ष रूपविधान, स्मृत रूपविधान और संभावित या कल्पित रूपविधान। इन तीनों प्रकार के रूपविधानों में भावों को इस रुप में जागृत करने की शक्ति होती है कि वे रस की कोटि में आ सकें। यही साहित्य से जुड़ा पक्ष है। संभावित या कल्पित रूपविधान द्वारा इस जागृत मार्मिक अनुभूति तो सर्वत्र काव्यानुभूति या रसानुभूति मानी जाती है।

अनुभूति काव्य कला का मूल तत्व है, इसलिए टॉल्सटॉय जैसे चिंतकों ने भी "स्पष्ट तौर पर अनुभूति के महत्व को स्वीकार किया।"[2] दूसरी तरफ इवांस ने कला को अनुभूति की भाषा में मानवीय अनुभूति की व्याख्या कहा है।"[3] कुछ आलोचक अनुभूति को रहस्यमय

कहकर टाल देते हैं। वहीं कुछ आलोचक सौन्दर्यानुभूति को विशिष्ट अनुभूति ही नहीं मानते। लेकिन हम सब यह जानते हैं कि भोज्य पदार्थों के ग्रहण करने के बाद की प्रतीति और कव्यानुशीलन के अनुभव में बहुत अंतर होता है। इस अंतर के कारण दोनों स्थितियों के प्रति हमारी प्रतिक्रिया बदल जाती है। अर्थात "आधार-भिन्नता के कारण अनुभूति भिन्न हो जाती है और इसका मुख्य कारण इसकी जटिलता है।"[4] दरअसल जीवन की साधारण अनुभूति जटिल नहीं होती या अपेक्षाकृत कम जटिल होती है, परन्तु सौन्दर्यानुभूति अपनी संश्लिष्टता के कारण विशिष्ट और अधिक जटिल होती हैं। वस्तुतः जीवन की साधारण अनुभूति की तुलना में सौन्दर्यानुभूति में यह संश्लिष्टता अनुभूति की इकाइयों के संश्लेष-के कारण होती है। इस संदर्भ में गौर किया जाए तो यह मान्य तर्क है कि यथार्थ के प्रति हमारी प्रतिक्रिया दो प्रकार की होती है : विशिष्ट और संश्लिष्ट | पहले प्रकार की अनुभति का प्रतिनिधि क्षेत्र विज्ञान है और दूसरे का कला। जबसे जीवन के सभी क्षेत्रों में विज्ञान का वर्चस्व बढ़ा है, तब से संश्लिष्ट प्रतिक्रिया की सत्ता ही एक प्रकार से अस्वीकृत कर दी गई। संश्लेषण के स्थान पर विश्लेषण को सर्वत्र महत्व दिया जाने लगा है।

इसी प्रभाव के कारण 20 वीं सदी के आरम्भिक कई वर्षों तक यह धारणा प्रचलित रही कि भौतिक यथार्थ ही सब कुछ है और विज्ञान ही यथार्थ के ज्ञान का एकमात्र साधन है। उस मान्यता के अनुसार यह आशा की जाने लगी कि विज्ञान ने जिस प्रकार से भौतिक जगत् के ज्यादातर रहस्यों का उद्घाटन किया है, उसी प्रकार से वह भौतिकेत्तर जगत् के रहस्यों के उद्घाटन में भी सफल होगा। परन्तु यह प्रत्याशा पूरी न हो सकी। इसके विपरीत कई प्रसिद्ध वैज्ञानिकों ने स्वयं विज्ञान की सीमा को स्वीकार किया है। उनके अनुसार "भौतिकेतर सत्ता का परिज्ञान विश्लेषण नहीं, संश्लेषण से सम्भव है। मनुष्य को पूर्णता में जानने का अर्थ है उसके व्यक्तित्व को जानना । किन्तु, विज्ञान मनुष्य को व्यक्तित्व के रूप में जानने का प्रयत्न नहीं करता।"[5] खुद विज्ञान की अनेक शाखाएं- प्रशाखाएँ हैं और प्रत्येक शाखा अपनी विशिष्टता का भिन्न प्रकार से दावा करती है। इनका ज्ञान विशिष्ट होते हुए भी केवल खण्डों का ज्ञान होता है जैसे आँख, कान, मस्तिष्क,तपेदिक या विषाणु-ज्वर, उदर रोग आदि के अलग-अलग विशेषज्ञ चिकित्सक होते हैं। ठीक ऐसे ही विषय विशेषज्ञता का रोग अन्य क्षेत्रों में भी व्याप्त है । इस विशेष ज्ञान का तात्पर्य है क्षेत्र या खण्ड-विशेष के सम्बन्ध में अधिक से अधिक तथ्यों का संग्रह करना।

यही हाल कला और साहित्य के क्षेत्र का भी है, जहाँ विश्लेषण सर्वोपरि समझा जाने लगा है। जैसे-सुर-साहित्य के विशेषज्ञ, तुलसी के विशेषज्ञ, प्रेमचन्द के विशेषज्ञ, प्रसाद के विशेषज्ञ आदि। सच पूछा जाए तो ये सभी वस्तुतः खण्डित तथ्य के जानकार हैं, अनुभव जगत के सत्य के ज्ञाता नहीं। इसीलिए, विशेषज्ञता के बावजूद ऐसे विशेषज्ञ साहित्य के सौन्दर्यानुभूति से अछूते रह जाते हैं, कला या साहित्य जगत के ज्ञान का प्रकाश इनके अनुभव जगत को दीप्त नहीं कर पाता। मनुष्य केवल नाक, कान आदि ही तो नहीं है, बल्कि इनके समुच्चय के सिवा वह और कुछ है। इस मसले को इस रुप में समझा जा सकत है कि मनुष्य को उसकी सम्पूर्णता में जानना ही उसका ज्ञान कहा जाएगा। अपूर्णता का ज्ञान साहित्य में सृजित पूर्णता के ज्ञान के लिए यदि प्रेरित नहीं करता, तो निश्चित रूप से यह ज्ञान प्रक्रिया दोषपूर्ण है। इसीलिए, असीम ज्ञान-विस्तार के बावजूद आज आनन्द का स्रोत सूखता जा रहा है। किसी मनुष्य के व्यक्तित्व का परिज्ञान रागात्मक सम्बन्ध से ही सम्भव है । रागात्मक सम्बन्ध की प्रतिक्रिया अनुभूति है। अतः साहित्य और कला का आधार अनुभूति ही है। इस अनुभूति का एक विशिष्ट रूप रहस्यानुभूति या प्रातिभ ज्ञान है। राधाकृष्णन् जैसे दार्शनिक इसे सत्य और यथार्थ के परिज्ञान का पूर्णतम साधन मानते हैं। यथा, "कवि की अनुभूति और रहस्यानुभूति में अन्तर यह है कि पहला दूसरे की तुलना में क्षणिक और अस्पष्ट होती है | कवि और कलाकार की अनुभूति, साधारणतः उसके द्वारा प्रयुक्त उपकरणों के माध्यम से अभिव्यक्त होती है"[6] लेकिन ऋषि, महात्मा , सन्त और रहस्यविद् की अनुभूति स्वयं उसके जीवन में व्यक्त होती है। जैसे वाल्मीकि और व्यास, कबीर और तुलसी, ज्ञानेश्वर और तुकाराम जैसे व्यक्तियों में कवि और सामान्य मनुष्य का अभिनव संगम हुआ था। मूलतः यह कि अनुभूति यथार्थ के परिज्ञान का सीधा साधन है। यह खण्डित और अपूर्ण नहीं, खण्ड और पूर्ण ज्ञान है।

यह अनुभूति साहित्य का मूलाधार है; लेकिन विज्ञान के प्रभाव में दिग्भ्रान्त हो जाने के कारण साहित्य शास्त्रियों ने इसकी उपेक्षा की। फलस्वरूप, एक ओर जहाँ साहित्य की एकांगी विवेचना हुई और दूसरी ओर घोर गतिशील मूल्यों की संभाव्यता साहित्य के मूल्यांकन की मूल समस्या साबित हुई है। पुराने समय के आलोचकों ने अपने-अपने युग में अपने युग की परिस्थितियों के अनुरुप उचित ढंग से इस समस्या का उत्तर पाने का प्रयास किया और समकालीन आलोचकों को उसमें अपना समाधान मिलता गया। मनुष्य स्वभावतः पूर्णता की ओर आकर्षण का अनुभव करता है, वहीं उसे सौन्दयं भी मिलता है और सत्य भी, तथा शिव की प्रतीति भी उसे वहीं होती है। कहीं वह अनजाने पूर्णता के लिए प्रयत्नशील रहता है तो कहीं जागरूक होकर। भाव की भाषा में पूर्णता ही सौन्दर्य है, चिन्तन की भाषा में सत्य और कर्म की भाषा में शिव । यह खण्ड की सत्ता का विश्लेषण नहीं, अखण्ड की अनुभूति है । अनुभूति के प्रसंग में उसकी गहराई और व्यापकता का प्रश्न भी विचारणीय है। अनुभूति की गहराई के लिए सूरदास का उदाहरण दिया जाता है और व्यापकता के लिए तुलसीदास का कहा जाता है कि वात्सल्य रस के क्षेत्र में सूरदास का किसी से मुकाबला नहीं हैं और उसमें तुलसीदास तो क्या, कोई भी कवि उनके समकक्ष नहीं, पर सूर का क्षेत्र सीमित है, जीवन के अन्य पक्षों तक उनकी पहुँच नहीं है। अगर सूर वात्सल्य रस में अप्रतिम हैं, तो तुलसी जीवन का कोना-कोना झाँक गये हैं। हिंदी के आधुनिक आलोचकों ने तुलसीदास की भावुकता का क्षेत्र विस्तृत बताकर उन्हें सूर से श्रेष्ठ कवि प्रमाणित किया है। सूर और तुलसी के प्रसंग में ही नहीं, अन्य लेखकों की आलोचना के संदर्भ में भी, इसी प्रकार का तर्क दिया जाता है । क्या लसीदास में अनुभूति की व्यापकता ही है, गहराई नहीं? क्या गहराई और व्यापकता अनुभूति के भिन्न और विरोधी तत्व हैं ? अनुभूति गात्मक प्रतिक्रिया माना गया है और उसकी अनिवार्य विशिष्टता व्यापकता नहीं, गहराई ही है। अनुभूति की स्थिति में जिस रागात्मक प्रतिक्रिया से कलाकार गुजरता है, उसमें वह तीव्र भावावेश की दशा में होता है, उसका अन्तर्मन आन्दोलित रहता है। वह एक प्रकार से उहापोह मिश्रित आनन्द का अनुभव करता है। इस समय कलाकार की वृत्ति अन्तर्मुखी होती है। रागात्मक प्रतिक्रिया का कारण तो कोई बाह्य वस्तु, घटना अथवा विषय होता है। पर वह (कलाकार) हलचल अपने भीतर अनुभव करता है। रागात्मक प्रतिक्रिया की बेचैनी के अनुभव के बावजूद कलाकार में इस समय एकाग्रता होती है, वह भीतर से चंचल होकर भी बाहर से शान्त होता है । इस स्थिति में चितवृत्ति की अन्तता के कारण, कलाकार फैलना नहीं, पैठना चाहता है। यह पैठ ही कलाकार की दृष्टि या विजन' (Vision) है। यह स्पष्ट है कि अनुभूति में मूल्य गहराई तक विद्यमान होता है। फिर तो यह प्रश्न उठता है कि व्यापक 'अनुभूति' क्या है? उपर्युक्त विवेचन से यह विदित होता है कि व्यापक अनुभूति गहरी अनुभूति की इकाइयों का संश्लेष है। अनेक अनुभूति-खण्डों के संश्लेष से कलाकार किसी कृति की रचना करता है । सूरदास जैसे सीमित क्षेत्र के कवि को भी सम्पूर्ण सूरसागर के वर्ण्य विषय की अनुभूति एक ही बार में नहीं हुई होगी। शुक्लजी ने सुर की उद्भावना-शक्ति की ओर संकेत किया है। "उद्भावना में नवीनता का तत्त्व निहित होता है।"[7] उनके कथन का तात्पर्य यह है कि यद्यपि सूर का क्षेत्र सीमित है, तथापि उसी सीमित क्षेत्र में उन्होंने जिस प्रकार वात्सत्य की असीम काव्यानुभूति का परिचय दिया है, वह व्यापक है। ऐसी सारी उद्भावनाएँ एक ही बार सूर को नहीं सूझी होंगी। सूर का अनुभव जगत या ज्ञान-सागर चाहे जितना सीमित हो; पर उसके लिए भी असंख्य बूंदों की आवश्यकता अवश्य हुई होगी। अतः सूर की अनुभव सीमा में भी अनेक इकाइयों का संश्लेष अनिवार्य रुप से हुआ है। वात्सल्य अपनी सम्पूर्ण व्यापकता और गरिमा के साथ सूर की कविता में अभिव्यक्त है । तुलसी की बात दूसरी है। वह अनुभूति की जिन इकाइयों का संश्लेष करते हैं,

उनकी भावभूमि विस्तृत है। पर, जहाँ तक अनुभूति की इकाई का प्रश्न है, सूर की ही तरह तुलसी की अनुभूति में भी पर्याप्त गहराई है। भावभूमि के विस्तार के कारण ही तुलसी की अनुभूति की गहराई का भान नहीं होता। सूर की गहराई सीमा में असीम प्रतीत होती है और तुलसी की गहराई विस्तार में खो गई- सी लगती है। अनुभूति के क्षेत्र में गहराई के प्रभाव में व्यापकता का कोई अर्थ ही नहीं होता । अनुभूति का प्रथम गुण गहराई है, व्यापकता की बात तो बाद में आती है।

इसलिए, बहुधा उठाया जानेवाला यह प्रश्न भ्रान्तिपूर्ण है कि अनुभूति में गहराई महत्त्वपूर्ण है या व्यापकता ? अगर अनुभूति में व्यापकता है, तो गहराई भी होगी ही, क्योंकि अनुभूति की गहराई का प्रश्न उसके अस्तित्व से सम्बन्ध रखता है। अनुभूति तो एक या दो ही हो सकती है जीवन में गुरुदेव जैसे महान् व्यक्ति को भी कुल तीन अनुभूतियाँ हुई।"[8]

गहराई और व्यापकता के सम्बन्ध में भ्रान्ति क्यों फैली ? विचारकों ने अनुभूति नहीं, उसके क्षेत्र को ध्यान में रखकर विचार किया। पर, अनुभूति और उसका क्षेत्र ये दो भिन्न वस्तुएँ हैं और इस अन्तर को सदा ध्यान में रखना आवश्यक है। व्यापक क्षेत्र के विवरण से सम्पन्न होकर भी कोई कृति अनुभूति शून्य हो सकती है। ऐसी स्थिति में यदि अनुभूति के स्थान पर उसके क्षेत्र को ध्यान में रखकर कृति का मूल्यांकन किया जायगा, तो भ्रान्ति होगी ही। ऐसी कृति वर्ण्य विषय की अनुभूति से प्रेरित होकर नहीं, पाण्डित्य अथवा किसी अन्य सामर्थ्य के कारण प्रस्तुत की जाती है। केशवदास की 'रामचन्द्रिका' इसका उदाहरण है। जिस रसिक कवि ने कभी कुएँ पर बैठकर अपने केशों को कोसा था, उसकी कविता वस्तुतः रसशून्य ही है। यदि 'रामचन्द्रिका' के वर्ण्य विषय के क्षेत्र के माधार पर ही केशव में अनुभूति की व्यापकता मान ली जाय, तो तुलसी और केशव में क्या अन्तर है ? सूर में गहराई, तुलसी में व्यापकता, केशव में व्यापकता - इस गणित के अनुसार केशव सूर से महान् और तुलसी के समकक्ष कवि हुए। पर, यह तर्क कितना निस्सार और भ्रान्त है, यह कहने की आवश्यकता नहीं । वर्ण्य विषय के क्षेत्र के विस्तार से न तो अनुभूति अनिवार्यतः व्यापक होती है और न उसकी सीमा से अनिवार्यतः गहरी । अतः, कृति के मूल्यांकन में पहले इसका निर्णय किया जाना चाहिए कि वह अनुभूति प्रेरित है या नहीं । जो कृतियाँ अनुभूतिशून्य हैं, साहित्य के इतिहास में उनकी चर्चा अनावश्यक है । इस प्रकार, साहित्य के क्षेत्र से कूड़ा-कचरा साफ हो सकेगा और नक्कालों के लिए सच्चे कलाकारों को मात करने की सम्भावना अत्यल्प रहेगी। वर्ण्य विषय के क्षेत्र विस्तार मात्र से नहीं, उसकी अनुभूति से, उसमें (अनुभूति में) व्यापकता आती है। केशव और तुलसी के काव्य में इस दृष्टि से मूल अन्तर यह है कि जहाँ प्रथम का, केवल वर्ण्य विषय का क्षेत्र विस्तृत है, वहाँ दूसरे की अनुभूति का निष्कर्ष यह कि तुलसी को 'लोक-हृदय की पहचान' थी, केशव सूचीकार मात्र थे।

अनुभूति की व्यापकता का रहस्य उसकी गहराई में निहित है । गहरी अनुभूति का अर्थ है, तीव्र और टिकनेवाली अनुभूति । श्रेष्ठ कृति का निर्माण श्रमसाध्य ही नहीं, समयसाध्य भी है । अगर अनुभूति में केवल तीव्रता हुई, तो कृति के पूर्ण होने के पूर्व ही रचयिता का भावावेश समाप्त हो जायगा और कृति के प्रारम्भ की तीव्रता का अन्त उसके खोखलेपन से होगा। ऐसी कृति में एक प्रकार की अस्पष्टता रहती है, उसका अर्थ खुल नहीं पाता । लगता है, कलाकार हड़बड़ी में है, अपनी अनुभूति के चर्वण का धैर्य उसमें नहीं होता और वह अप्राप्त प्रेरणा के आधार पर ही रचना कार्य के लिए आतुर हो उठता है। ऐसी रचनाओं के मूल में ही खोटापन रह जाता है। ऐसे कलाकार शब्दाडम्बर और भाषा के अन्य चमत्कारों में पड़कर पहेली बुझाने लगते हैं । अतः, इस परम्परागत मान्यता में परिवर्तन करने का कोई कारण नहीं दीखता कि कला साधना की वस्तु है । कलाकार को अनुभूति के इंगित को समझने के लिए भी साधना करनी पड़ेगी और उसको व्यक्त करने के लिए भी।

रागात्मक प्रतिक्रिया, जिसे अनुभूति की संज्ञा दी गई है, एक भावदशा है । यह अल्पकालिक भी हो सकती है और दीर्घकालिक भी । जीवन की साधारण स्थिति की तुलना में यह एक उच्चतर स्थिति है। इसीलिए, जीवन के विरल क्षणों में महान् कलाकार जिस भावदशा को प्राप्त करता है, साधना के बलपर वह उसे जीवन पर्यन्त टिकाये रखना चाहता है। प्राचार्य शुक्ल ने इसे 'हृदय की मुक्तावस्था' कहा है । महान् कलाकारों के लिए कला स्वभावतः जीवन का सम्पूर्ण दर्शन हो जाती है, उनका सारा जीवन किसी अनुभूत सत्य के लिए अर्पित होता है। ऐसी स्थिति में अनुभूति गहरी होने के साथ-साथ व्यापक भी हो जाती है । अभ्यास के कारण ऐसा कलाकार सदा जीवन की साधारण स्थिति से उच्चतर स्थिति में होता है । उसकी दृष्टि जीवन और जगत् के नानारूपात्मक क्षेत्रों की ओर जाती है, तब उसकी अनुभूति में गहराई के साथ 'व्यापकता' नामक धर्म जुड़ जाता है । फलतः, जब व्यापकता का प्रश्न वस्तुतः कलाकार की दृष्टि से सम्बद्ध है। सूर के श्राराध्य कृष्ण के अतः, अनुभूति की जीवन में तुलसी के प्राराध्य राम के जीवन से कम व्यापकता नहीं है; परन्तु पुष्टिमार्ग की मर्यादा के कारण सूर की दृष्टि कृष्ण के बाल-जीवन के

सिवा अन्यत्र गई ही नहीं। अगर सूर महाभारत के कृष्ण को भी देखना चाहते, तो बात दूसरी होती । कला में, कलाकार को जो दिख जाता है, उससे, जो वह देखना चाहता है, उसका महत्त्व कम नहीं । प्रतः, दृष्टिभेद भी विचारणीय है, यद्यपि साधारणतः इसकी उपेक्षा ही कर दी जाती है । हाँ, यह प्रश्न भी महत्वपूर्ण है कि सूर की दृष्टि कृष्ण के जीवन के प्रमुक पक्ष की ओर ही क्यों गई, अमुक की ओर क्यों नहीं, पर यह प्रश्न तुलसी के लिए भी विचारणीय है। वस्तुतः, 'निरंकुश' कलाकार को इतनी छूट तो देनी ही होगी कि वह अपने वर्ण्य विषय का चुनाव कर सके। जीवन के जिस क्षेत्र में कलाकार की वृत्ति नहीं रमती, उसका उधर झाँकना उसकी अनधिकार चेष्टा होगी। महान् कलाकार की एक विशेषता यह भी है कि वह अपनी सीमा को जानता है। इसीलिए, सूर ने तुलसी की तरह जीवन के अन्य क्षेत्रों की ओर नहीं झाँका, और न तुलसी सूर की तरह बाल-जीवन की विस्तीर्णता और बारीकी में उतरे । अनुभूति (Feeling) किसी एहसास को कहते हैं। यह शारीरिक रूप से स्पर्श, दृष्टि, सुनने या गन्ध सूंघने से हो सकती है या फिर विचारों से पैदा होने वाली भावनाओं से उत्पन्न हो सकती है।"[9] संस्कृत में 'अनुभूति', 'अनुभव' का समानार्थी है। इसका अभिप्राय है साक्षात, प्रत्यक्ष ज्ञान या निरीक्षण और प्रयोग से प्राप्त ज्ञान। जहां तक कविता का संबंध है इस क्षेत्र में अनुभूति शब्द का व्यापक प्रयोग किया जाता है भावानुभूति, रसानुभूति, लौकिक अनुभूति, अलौकिक अनुभूति, प्रत्यक्षानुभूति, समानानुभूति, रहस्यानुभूति, काव्यानुभूति आदि अनेक रूपों में इसका प्रयोग मिलता है। "सौंदर्यानुभूति" का अभिप्राय स्पष्ट करते हुए शुक्ल जी कहते हैं कि "जब किसी वस्तु के रूप रंग की भावना में डूबकर हम अपनी आंतरिक सत्ता को भूलकर तादाकार हो जाते हैं तो इसी को "सौंदर्यानुभूति" कहते हैं। अंतःसत्ता की "तादाकार परिणीति" ही सौंदर्यानुभूति है।"[10] जयशंकर प्रसाद के लेख 'काव्यकला' में अनुभूति का अर्थ 'आत्मानुभूति' माना गया है जो चिन्मयी धारा से जुड़कर किंचित रहस्यमयी हो जाती है।"[11] प्रसिद्ध आलोचक नंददुलारे वाजपेयी "आत्मानुभूति को साहित्य का प्रयोजन मानते है।"[12] इधर अनुभूति को प्रयोगवादियों ने वैयक्तिक कहकर अपनी वैयक्तिकता का ही परिचय दिया है क्योंकि वैयक्तिक विशेषण लगाने से अनुभूति का अर्थ भिन्न हो जाता है। वही साहित्य एवं अन्य ज्ञान-क्षेत्रों के विमर्शों में स्वानुभूति बनाम सहानुभूति की बहस छिड़ जाने के उपरांत अनुभूति पर नए सिरे विचार करने की आवश्यकता है।

संदर्भ

1. रस मीमांसा-आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ग्रंथावली-2 (स.-ओ. पी. सिंह), प्रकाशन संस्थान, पृष्ठ-56
2. What is Art?- Leo Tolstoy (Translated)- Funk & Wagnalls Compony, Page-183
3. Philosophical Spects of Modern Science- Ivan Dominic, Page-266-67
4. Psychoanalytic Literary Criticism-Mould Ellman, Page-147-48
5. Literature and Science- Aldous Huxley, Page-90
6. An Idealist View of Life- S. Radha Krishnan, Page-187.
7. रस मीमांसा-आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ग्रंथावली-2 (स.-ओ. पी. सिंह), प्रकाशन संस्थान, पृष्ठ-56
8. [1] प्रेरणा-कला का स्त्रोत: साहित्य का मूल्यांकन-राजेन्द्र कुमार, ज्ञानोदय, अगस्त, १६६० ई०, पृ० ८५ ।
9. चिंतामणि भाग-1 -रामचंद्र शुक्ल , इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग, पृष्ठ-87
10. चिंतामणि भाग-1-2 -रामचंद्र शुक्ल , इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग, पृष्ठ-46
11. काव्य और कला तथा अन्य निबंध, जयशंकर प्रसाद, लोक भारती प्रकाशन, पृष्ठ-78
12. हिंदी साहित्य, नंददुलारे वाजपेयी, इंडियन बुक डिपो, लखनऊ, पृष्ठ-24